लोकतंत्र एवं वैज्ञानिक मानसिकता
भारतीय सन्दर्भ और व्याख्याएँ

हृदयकान्त दीवान

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51 'अ' में मूल कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है। इन कर्तव्यों में से एक बिन्दु में लिखा गया है – 'नागरिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करें'। इनमें से वैज्ञानिक दृष्टिकोण का ज़िक्र देश के सभी प्रमुख शिक्षा सम्बन्धी दस्तावेज़ों में इसके महत्व को रेखांकित कर एक लक्ष्य के रूप में रखा गया है।

वैज्ञानिक मानसिकता पर विमर्श

सन् 1981 में नेहरू सेंटर, बम्बई के प्रांगण से वैज्ञानिक मानसिकता के अभाव पर चिन्ता जताते हुए कुछ वैज्ञानिकों व प्रशासकों द्वारा एक प्रपत्र जारी किया गया। इस प्रपत्र से मानो अध्येताओं का समूह दो हिस्सों में बँट गया। एक ओर आशीष नंदी, शिव विश्वनाथन, वंदना शिवा जैसे अध्येता थे, जो इस दस्तावेज़ को विज्ञान व वैज्ञानिक मानसिकता के अन्ध महिमागान के रूप में देख इसकी गहरी आलोचना कर रहे थे। दूसरी ओर इन आलोचनाओं के प्रत्युत्तर में व घोषणा पत्र के समर्थन में बहुत-से अन्य अध्येताओं ने बढ़-चढ़कर लिखा। हालाँकि, उनमें से भी कुछ ने इस दस्तावेज़ के कुछ पहलुओं, खास तौर पर अभिव्यक्ति के तरीके, से असहमति भी जताई किन्तु इसकी मूल भावना के महत्व को उन्होंने लोकतंत्र, न्याय व बराबरी हासिल करने की राह में अनिवार्य कदम माना। वैज्ञानिक मानसिकता क्या है, उसका विज्ञान व प्रोद्योगिकी से क्या कोई लेना-देना है, उसका सामाजिक व व्यक्तिगत नैतिक ढाँचे से क्या सम्बन्ध है, उसके संविधान की प्रस्तावना में शामिल किए जाने के लक्ष्य क्या-क्या हो सकते हैं, जैसे

कई महत्वपूर्ण सवाल आज भी हमारे सामने हैं। ये प्रश्न आज़ादी मिलने के समय भी बहस में थे और आज भी उतने ही मोजूँ हैं। इसलिए बहस व उससे जुड़े मसलों को समझना महत्वपूर्ण है।

नेहरू ने विज्ञान व इसके महत्व पर कई बार अपने विचार सबके सामने रखे। पुरुषोत्तम अग्रवाल ने हाल ही में प्रकाशित किताब *कौन है भारत माता* में 1950 में एक नई प्रयोगशाला के उद्‌घाटन के समय नेहरू द्वारा दिए भाषण को उद्धृत किया है। उसमें नेहरू ने जो कहा, उसका लब्बोलुआब यह है कि विज्ञान इमारतों व उपकरणों से नहीं इन्सानों से सम्बन्धित है। विज्ञान उद्योगों व व्यवसाय की नौकरानी नहीं है - वह उनकी मदद ज़रूर करता है किन्तु यह देश के लोगों के लिए बेहतर व अधिक मौके पैदा करने का काम है। वे यह भी कहते हैं कि विज्ञान का ध्येय प्रकृति से युद्ध नहीं वरन् उसे समझकर व उससे तालमेल बिठाकर, इन्सानियत के हक में प्रकृति का उपयोग करना है। उनके अनुसार विज्ञान लगातार परिवर्तनशील है व समाज को भी गति देता है। वह समाज के रूढ़िवादी, यथास्थिति व निरन्तरता-पोषक व्यवहार के साथ संघर्ष कर परिवर्तन लाता है। विज्ञान की मूल आत्मा में सबसे नए खोजे गए 'तथ्यपरक' 'मान्य सच' को स्वीकारना है। यानी एक लगातार परिवर्तन की प्रक्रिया जिसमें नई खोजों के आलोक में किसी भी सामाजिक या औद्योगिक या आर्थिक बनावट के बन्धनों को तोड़ा जा सकता है। इस मायने में नेहरू विज्ञान को सामाजिक, आर्थिक व तकनीकी परिवर्तन का इंजन मानते हैं।

नेहरू यह भी कहते हैं कि वैज्ञानिक भी अपने जीवन में विज्ञान के तरीकों, दृष्टिकोण व मूल आत्मा को नकारते हैं। नेहरू समाज की रीतियों की जड़ता व संकीर्णता पर चिन्ता जताते हुए कहते हैं कि संस्कृति असल में विचार और चेतना के विस्तार का नाम है। संस्कृति को इसके विपरीत अर्थ देकर इन्सान अथवा देश की चेतना के विकास को रोकना, इसका गलत अर्थ लगाना है[1]। इसी बात को भगत सिंह के नेहरू के बारे में वक्तव्य[2] में देखा जा सकता है। भगत सिंह ने नेहरू के उस वक्तव्य को रेखांकित किया है जिसमें उन्होंने युवाओं से न सिर्फ राजनैतिक बल्कि सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक क्षेत्रों में भी विद्रोह करने को कहा, यानी जो बात अपनी समझदारी की कसौटी पर सही न बैठे, उसे कुरान व वेदों के आधार पर सही नहीं मानें। नेहरू के वक्तव्य का सार यह है कि हर देश अपने आप को प्राचीन ज्ञान

---

[1] *अग्रवाल:2021, pp. 358-360.*

[2] *पृष्ठ 382-383.*

चित्र विकिपीडिया कॉमन से साभार।

नेशनल केमिकल लेबोरेट्री, पुणे में जवाहरलाल नेहरू।

का स्रोत व महान मानता है और वह हर देश के लिए सही भी है। परन्तु इस तरह के गौरव का खास फायदा नहीं है क्योंकि यथार्थ की दुनिया उस युग में नहीं लौट सकती। इसीलिए परिवर्तन व नई खोज ही आगे बढ़ने का रास्ता है।

हक्सर, रमन्ना व भार्गव 1981 के दस्तावेज़ में वैज्ञानिक मानसिकता की व्याख्या ‘rational attitude’ के रूप में करते हैं और उसे समाज के ऐसे पुनर्निर्माण की ताकत के लिए ज़रूरी मानते हैं जिसमें सभी लोगों की आकांक्षाएँ सम्मिलित हों। यह वही समझ है जो कमोबेश कोठारी आयोग की 1966 की रपट में दिखती है जिसमें विज्ञान की पढ़ाई को न सिर्फ विज्ञान व तकनीकी में इज़ाफे के लिए आवश्यक समझा गया है वरन समाज में रूढ़ियों व ‘मृत’ परम्परा को प्रमाण आधारित तार्किक समझ द्वारा चुनौती देने के लिए भी।

वैज्ञानिक मानसिकता को राष्ट्रीय व सामाजिक विकास व संविधान के न्याय, बराबरी व बन्धुत्व की ओर बढ़ने के रास्ते के रूप में रखने का यह प्रस्ताव बहुत आग्रहपूर्ण व सशक्त था। इस पर कई तरह के दृष्टिकोण से तीखी प्रतिक्रियाएँ हुईं। इससे एक बड़ी बहस शुरू हुई जिसने यह माना कि विज्ञान का यह गुण है कि वह समाज को सही दिशा दिखा सकता है; जबकि कई अध्येता इसे अन्याय, शोषण व उपनिवेशवाद की जड़ मान रहे थे। एक महत्वपूर्ण बहस इस बात पर थी कि क्या वैज्ञानिक मानसिकता की वृहद समझ व विज्ञान अपने आप में मूल्यों का एक ढाँचा समाहित करता है? क्या यह निरपेक्ष, सही व तार्किक रास्ता दिखा सकता है?

इस बहस को याद करना व

उसकी प्रमुख बातों पर विचार करना इस मसले को समझने के लिए उपयोगी होगा। जैसा कि ऊपर स्पष्ट है, विज्ञान में मूल्यों के ढाँचे को निहित मानने वाले इसकी सत्यता की कसौटी व हरेक के लिए प्रमाणों व तर्कों को प्रस्तुत करने की स्वतंत्रता एवं आवश्यकता पर बल देते थे। वे कहते थे कि इन्सानों की हर मायने में बराबरी, एक-दूसरे की बात को व उसे कहने के ढंग को जगह देना और विचारों व समझ में अन्तर होने पर बेहतर विकल्प को ही चुनना व उस पर तार्किक रूप से सहमत हो पाना - खुलेपन व सहिष्णुता का आधार है। यह हमें प्रकृति के दोहन व शोषण से भी रोकेगा क्योंकि यह दोनों ही कार्य गैर-तार्किक हैं।

यह भी एक प्रश्न है कि क्या वैज्ञानिक मानसिकता का विकास व विज्ञान का लोकव्यापीकरण एक ही मायना रखते हैं? या फिर विज्ञान लोकव्यापीकरण कहने में ही यह निहित है कि हम किस विज्ञान की समझ व किस विज्ञान की बात कर रहे हैं। इन पर हम बाद में आएँगे। यह विज्ञान के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण प्रश्न है क्योंकि इस बात में तो कोई शक नहीं कि विज्ञान हमारे ज्ञान व समझ का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। अपनी प्रकृति के कारण यह लगातार नया होता रहता है। इसलिए किसी भी बात के पक्ष में यह तर्क कि चूँकि यह वैज्ञानिक है इसलिए सही है, विज्ञान की मूल भावना के खिलाफ है। विज्ञान शिक्षण का उद्देश्य इसके गुणों के आधार पर, इसके तरीके व सत्य की कसौटी को समझकर उनमें दक्षता हासिल करना है। इसीलिए विज्ञान को भी अपरीक्षणीय तथ्यों का भण्डार बनाकर अन्धविश्वास की श्रेणी में लाना अनुपयुक्त है। इसकी सीमा को ध्यान में रखकर इसके समकक्ष और कई बार इससे अधिक महत्व अन्य विषयों को दिया जाना चाहिए, जिसमें इन्सानी सम्बन्धों, बाज़ार व इन्सान के रिश्ते, सामाजिक संरचना व उसका संयोजन व संचालन, सत्ता, बराबरी, न्याय आदि के अर्थ व सन्दर्भ की तार्किक पड़ताल होनी चाहिए। हर विषय की अपनी सत्य की कसौटी है, बच्चों को इन कसौटियों की समझ व पड़ताल का तरीका आना उतना ही आवश्यक है जितना विज्ञान के सन्दर्भ में।

इस नज़र से देखें तो शिक्षा के अन्तर्गत विज्ञान व उसकी प्रकृति पर चर्चा न केवल विज्ञान की प्रकृति से जुड़ा मसला है बल्कि बच्चों की शिक्षा से भी जुड़ा मसला है। यदि हम विज्ञान की प्रकृति व बच्चों की शिक्षा के बारे में साथ-साथ सोचें तो हम देखते हैं कि इनकी अन्त:क्रिया की वजह से कई नए आयाम उभरकर सामने आते हैं। हर एक लोकतांत्रिक देश में मौकों की बराबरी, न्याय, विचारों का खुलापन, सहिष्णुता, करुणा व बहुलता (प्लूरैलिटी) की

आवश्यकता है। ये लोकतंत्र की नींव हैं व उसके स्वास्थ्य व निरन्तरता का आधार भी। विज्ञान के बारे में बहुत-से लोग कहते हैं कि यह विचारों की स्वतंत्रता, विविधता व खुलेपन का आधार है। विज्ञान की समझ व उससे बनी वैज्ञानिक मानसिकता सीखने वाले के नज़रिए पर असर डाल उसे व्यापक बनाती है। यह भी कहा जाता है कि खोज करने का और नए ज्ञान को स्वीकार करने का विज्ञान का तरीका अत्यन्त सुविचारित है। इसे बाकी सभी विषयों, सामान्य जीवन व नीतिगत मसलों आदि पर लागू करने से, इन सभी मसलों पर भी सशक्त रूप से विचार हो सकता है। यह गहराई से सोचने का एक आधार देता है। ऐसा भी कहा गया है कि विज्ञान अपने-आप में मूल्यों का भी एक ढाँचा है। यह सही-गलत पहचानने का भी आधार दे सकता है। वैज्ञानिक मानसिकता के अहम पहलुओं में तार्किकता व विचारों को तर्क की कसौटी पर आँकना प्रमुख रूप से शामिल है। पर हम देखेंगे कि ये बातें अर्द्धसत्य ही हैं - न ही ये गलत हैं और न ही पूर्ण रूप से सही। और इसलिए इन विचारों, शिक्षा के स्वरूप और उसमें विज्ञान की जगह और उसके विशिष्ट महत्व पर विमर्श करना महत्वपूर्ण है।

विज्ञान और आस्था के बीच द्वन्द्व

भारत के सन्दर्भ में (बाकि देशों में भी तुल्य पहलू मिलेंगे) विज्ञान व वैज्ञानिक मानसिकता ने कई प्रमुख मान्यताओं व परम्पराओं को बदलने में मदद की है। विज्ञान की अवधारणाओं ने सभी लोगों की बराबरी को तार्किक सबूतों के साथ उजागर किया और सामाजिक खामियों को बदलकर विचारों व परम्पराओं को खुलने में मदद की। विज्ञान की समझ को लोगों तक ले जाने के लिए बीसवीं सदी के आखरी दो दशकों में विज्ञान लोकप्रियकरण व लोकव्यापीकरण के प्रयासों की संख्या में बहुत इज़ाफा हुआ। बाबाओं द्वारा दी जाने वाली भभूतियों या दहकते अंगारों पर चलने के प्रदर्शन जैसे कई तरह के कार्यों को आम लोगों को करके दिखाया गया व लोगों को इनमें भागीदारी के मौके भी दिए गए। इनमें से बहुत सारे प्रयासों में उनके पीछे छिपे विज्ञान को भी समझाने का प्रयास किया गया। गाँव-गाँव में विज्ञान के प्रयोग, विज्ञान आधारित नाटक, विज्ञान की उपलब्धियों के गुणगान आदि के ज़रिए इन सब तथाकथित व पुरातन रूढ़िवादी मान्यताओं के खिलाफ प्रचार किया गया। इसके लिए प्रदर्शनियाँ भी आयोजित की गईं व प्रदर्शन भी।

इस सबके बीच या उसकी प्रतिक्रिया के बीच गणेश की मूर्तियों के दूध पीने की खबर को लेकर आनन-फानन में लाखों लीटर दूध

आग पर चलती हुई एक महिला।

मूर्तियों ने तो ज़रूर दूध पिया ही है। उनके लिए प्रत्यक्ष को नकारना तो मुश्किल था, किन्तु भावनात्मक आस्था व विश्वास के कारण यह स्वीकारना भी मुश्किल था कि किसी भी मूर्ति ने दूध नहीं पिया होगा। मूर्ति दूध नहीं पिये, यह हो ही नहीं सकता।

विज्ञान के विचार को फैलाने के प्रयासों को चुनौती देने के लिए कई ऐसे और भी मसले व परिस्थितियाँ गढ़ी गईं जिनमें विज्ञान के सामने दैवीय शक्ति और चमत्कारों के कथित उदाहरणों से सुदृढ़ की गई विश्वास की चुनौती बार-बार लाई गई। इसी तरह समाज व अर्थव्यवस्था के सत्ता समीकरणों को बरकरार रखने के लिए भी धर्म व जाति के अस्तित्व को ज्यों-का-त्यों रखते हुए यथास्थिति बनाए रखने का प्रयास भी लगातार हो रहा है। समूहों के बीच गैर-वैज्ञानिक व गैर-तार्किक कारणों से वैमनस्य पैदा कर उसके आधार पर वोट की राजनीति चलाना, उसका एक लक्ष्य है। लोगों में विवेक के निर्माण के लिए अवसर बनाने के प्रयास के साथ-ही-साथ उसकी विपरीत दिशा में पुरातन सोच

नालियों में बहा दिया गया। धर्म में आस्था को स्थापित करने वाले सभी लोग व संस्थाएँ इसमें सक्रिय थे। इस दौर में दोनों तरफ से ज़ोरदार प्रयास हुए और भरपूर प्रयास के बावजूद विज्ञान की समझ फैलाने का प्रयास कर रहे जत्थे ज़्यादातर लोगों के मन से गणेश की मूर्ति के दूध पीने की घटना निकाल नहीं पाए। भभूति व अन्य किस्सों के समान ही, यहाँ भी गणेश की मूर्ति में दूध नहीं जा रहा, यह प्रत्यक्ष देखकर भी आम लोगों द्वारा यह मानना मुश्किल था। उन्हें यही लगता था कि शायद यहाँ तो दूध गणेश जी के शरीर में नहीं जा रहा, किन्तु गणेश की कुछ अन्य

गणेश की मूर्तियों को दूध पिलाने के दौरान लाखों लीटर दूध इस्तेमाल किया गया।

आधारित मिथकों को आडम्बर सहित यथार्थ की तरह घर-घर लोगों तक ले जाने का काम विभिन्न माध्यमों से कई-कई बार हुआ। मिथकों व काल्पनिक गाथाओं को भावनात्मक रूप से उद्वेलित करने हेतु कई ऐतिहासिक अर्धसत्यों व असत्यों को भी गाथाओं व नाटकों के रूप में प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया गया। इनमें कई बार प्रत्यक्ष रूप से, किन्तु परोक्ष रूप से लगभग हर बार उन मूल्यों को व उन विचारों पर ज़ोर दिया गया जिनमें इन्सानी बराबरी व बन्धुत्व की भावना का धता बताते हुए वैमनस्य को घोलने की मंशा दिखती है।

स्वतंत्रता के समय व उससे पहले से ही बन्धुत्व व तार्किक सोच के विकास से रूढ़ियों व गुलामी की प्रवृति से आज़ादी पाने के लक्ष्य की ओर बढ़ने के रास्ते में हमेशा से ही संघर्ष रहा है। एक ओर तो टैक्नोलॉजी व उसके साथ कुछ हद तक जुड़े अन्धाधुन्ध अनियंत्रित विकास से जोड़कर आज की हर प्रकार की तकनीकों/प्रोद्योगिकीय विकास के सभी दोषों को विज्ञान पर मढ़ दिया गया, और दूसरी ओर उसकी तार्किकता की माँग को विश्वास विरोधी बताकर धर्म के बरक्स खड़ा कर दिया गया। ज़ाहिर है कि इन दोनों ही प्रयासों में विज्ञान व उसकी समझ के बहुत-से महत्वपूर्ण पहलुओं को नज़रअन्दाज कर दिया गया।

विज्ञान और बाज़ार के बीच द्वन्द्व

इसी तरह का दोतरफा आक्रमण बाज़ारी ताकतों की ओर से भी हुआ। एक तो विज्ञान की भाषा व वैज्ञानिकों के लिबास में व्यक्तियों द्वारा या फिर

वैज्ञानिकों के हवाले से कुछ उत्पादनों को प्रमोट करने का प्रयास था। जैसे कोई विज्ञापन कहता है कि वैज्ञानिक ढंग से जाँच की गई है कि यह पदार्थ दूध की शक्ति बढ़ाता है। इसके बाद और कुछ विवरण नहीं दिया जाता कि इस कथन का आधार क्या है और इसे कैसे परखा गया है। यह भी स्पष्ट नहीं है कि दूध की शक्ति का अर्थ क्या है और उसके कौन-से हिस्से में बढ़ोत्तरी होती है, वह बच्चों के लिए लाभदायक क्यों है आदि। यह भी स्पष्ट नहीं होता है कि इस परीक्षण को आखिर वैज्ञानिकों ने किया ही क्यों और इसके लिए पैसा कहाँ से मिला। इस शोध पर निवेश करने वाले की इसमें क्या रुचि है?

इसके अलावा भी बहुत-से विज्ञापन हैं जिन्हें समझना होगा, जैसे किसी खास उत्पाद के उपयोग से ज़्यादा प्रभावी सफाई होती है; किसी पदार्थ के सेवन से ज़्यादा दिमागी शक्ति आती है आदि। इसी तरह यूरिया, पेस्टिसाइड, डिटरजेंट व अन्य रासायनिक उत्पादनों के अन्धाधुन्ध उपयोग को बिना यह बताए प्रोत्साहित किया गया कि इनसे पर्यावरण को हानि हो सकती है। इसी तरह यह प्रचार कि यह साबुन, यह टूथपेस्ट, यह डिटरजेंट अच्छा है क्योंकि यह वैज्ञानिक विशेषज्ञों द्वारा अथवा परीक्षणों द्वारा प्रमाणित है। यह नहीं बताते कि परीक्षण क्या थे; वे कैसे हुए; कुल मिलाकर विज्ञान के नाम का उपयोग मात्र कुछ खास उत्पादों को प्रमोट करने के लिए होता है। इसमें एक ओर तो आर्थिक हित है, दूसरी ओर सामाजिक व राजनैतिक। इसका सबसे ताज़ा उदाहरण है, एक वैज्ञानिक संस्थान को यह खोजने के लिए अनुदान देना कि किसी शब्द समूह के बार-बार उच्चारण से बीमारी पर असर पड़ता है।

विज्ञान की समझ को भ्रमित करने का यह सबसे नया प्रयास राज्य सत्ता व उसके अनुदान की मदद से देश के प्रमुख विज्ञान व टैक्नोलॉजी संस्थानों में से एक में होगा। जन टैक्नोलॉजी के बहुत महत्वपूर्ण शोध मुद्दों को इसमें पूर्णतः नज़रअन्दाज़ किया गया है। एक ओर तो विज्ञान के विकास के लिए लाज़मी शोधों के लिए राशि का अभाव है और दूसरी ओर इस तरह के गैर-वैज्ञानिक शोध के लिए अनुदान उपलब्ध होना हास्यास्पद भी है और रुला देने वाला भी। विज्ञान की समझ व दायरे को भी इसमें भुला दिया गया है। हाल के वर्षों में विज्ञान पर इस तरह के आक्रमण लगातार बढ़ते जा रहे हैं। दूसरी ओर, विज्ञान को पश्चिमी, बाहरी और संस्कृति व धर्म के खिलाफ बताते हुए कई अन्य तरह के भ्रम फैलाने का कार्य अनवरत चलता रहा है। हाल में नए-नए बने मण्डी स्थित IIT के डायरेक्टर ने बुरी शक्तियों की बात कर, उस प्रयास को आगे बढ़ाया जिसके तहत

ज्योतिषशास्त्र, भारतीय मिथकों जिनमें गौ वंश के गुणों को स्थापित करना, हवन से हवा की शुद्धता में बढ़ोतरी दिखाना व ऐसे अन्य कार्य भी विज्ञान माने जाएँगे व शोध के लिए अनुदान पा सकेंगे। ज़ाहिर है कि विज्ञान पर हो रहे आवश्यक कार्यों को छोड़कर इस तरह के मसलों पर अनुदान के मार्फत शोध करवाने का कोई भी आधार स्पष्ट नहीं है। फिर भी विज्ञान व टेक्नोलॉजी के संस्थान के प्रमुख के रूप में संचालक महोदय का कथन यह स्पष्ट दिखाता है कि आज चुने जा रहे वरिष्ठ विद्धत जनों की समझ का झुकाव किस ओर है।

विज्ञान की प्रकृति की समझ और दार्शनिक आधारों को चुनौती

एक ओर तो विज्ञान के अर्थ, उसके आधार, उसके मायने व उसकी समझ पर आक्रमण है। इस आक्रमण में उसकी प्रामाणिक बातें बताने की ताकत को छद्म ढंग से स्वीकारते हुए वास्तव में उसकी तार्किकता व दार्शनिक आधार को ही चुनौती दी जा रही है, जिससे उसके स्वरूप व उसमें शामिल सोच व समझ के ढंग को विकृत कर उसका आधार बदल दिया जाए। दूसरी ओर, उसे नुकसानदेह व दम्भी बताकर आस्था से विस्थापित करने का प्रयास है। यानी यह आग्रह कि विज्ञान, उसके तरीके व तर्क को ज्ञान की सत्यता जाँचने का आधार बनाना ही दोषपूर्ण है। आस्था व भावना के महत्व को दरकिनार कर विज्ञान व तर्क को सत्य का, अथवा ज्ञान का आधार मानना गलत है।

यह स्थापित करने का प्रयास भी है कि विज्ञान ऐसा कुछ नहीं बताता जो पहले से ही ज्ञात नहीं था। आजकल तो हर दिन धार्मिक ग्रन्थों व मिथक कहानियों अथवा गाथाओं के कथनों का कुछ नया विवेचन आ जाता है। इस विवेचन की कोशिश यह दिखाना है कि इनमें आधुनिक विज्ञान व अन्य ज्ञान (हाल में प्राप्त समझ व जानकारी) पहले से ही शामिल था। यानी विज्ञान ने इतने सारे लोगों के द्वारा किए गए विभिन्न तरह के शोधों के लम्बे प्रयास से जो हासिल किया, वह तो पहले से ही धर्म सम्बन्धी कथनों में देखा जा सकता है। हर प्रकार के स्पष्टतः दकियानूसी रीति-रिवाज़ के लिए भी गैर-तार्किक सम्बन्ध जोड़कर यह कहा जाता है कि न सिर्फ उक्त रिवाज़ उचित हैं बल्कि आज के ज्ञान में भी पाए जाते हैं। इसके साथ जुड़ा यह दावा भी है कि यह ज्ञान रिवाज़ के मान्य बनाए जाने के समय भी था। अतीत की मान्यताओं में लौटने का ऐसा प्रयास जो विज्ञान द्वारा हासिल की गई समझ को उलटकर प्रस्तुत करे। उदाहरणत: हिन्दू रिवाज़ों के सन्दर्भ में दबे स्वर में यह भी कहा जा रहा है कि कोरोना की सावधानियाँ जैसे छूना नहीं, दो

गज़ दूरी और मास्क पहनना कुछ और नहीं है, बस छुआछूत व मुँहपट्टी हैं। इसलिए हमें छुआछूत को गलत नहीं कहना चाहिए - उसकी भावना को जायज़ मान सकते हैं और कोरोना से बचने का यह सब ज्ञान उस समय पता था। इसमें यह भी कह दिया जाता है कि जो छुआछूत का बाद का रूप बना, वह विकृत था। किन्तु सही रूप क्या है, विकृति क्या है - यह सब अधूरा छोड़ दिया जाता है।

इस सबसे विज्ञान के समाज के साथ रिश्ते के प्रश्न ही नहीं, खुद विज्ञान क्या है, ये प्रश्न भी उलझ जाते हैं। इसमें हम बीसवीं सदी की वैज्ञानिक मानसिकता दस्तावेज़ के इर्द-गिर्द हुई वैचारिक बहस ही नहीं वरन् सतरहवीं शताब्दी से शुरू हुई विज्ञान की दार्शनिक परिभाषा की विकास यात्रा पर भी प्रश्न चिह्न लगाकर, उसे बहस के दायरे में ले आते हैं। विज्ञान को दम्भी व अपने आपको ही सही समझने वाला तर्क भी इसी प्रयास का हिस्सा है। उसमें विज्ञान को ज्ञान और सोच के अनेकों रास्तों में से एक के रूप में प्रस्तुत कर, उसके पदार्थवादी चरित्र व यथार्थ में प्रस्तुत हो पाने वाले प्रमाणों व तार्किकता को संकीर्ण बताकर नकारना शामिल है। उसकी अपनी अनिश्चितता व परिवर्तनशीलता की स्वीकार्यता को उसकी कमज़ोरी बताकर, अप्रमाणित आस्था को धन और बल के ज़ोर पर बार-बार प्रसारित कर, सत्य के रूप में स्थापित करने की मुहिम तेज़ होती गई है।

कैसे करें इस चुनौती का सामना?

कुल मिलाकर यह विज्ञान के अर्थ को बदलकर उसको गैर-वैज्ञानिक सोच के लिए इस्तेमाल करने की कोशिश और उस पर बुनियादी प्रश्न पूछकर व उसके सिद्धान्तों को तोड़मरोड़ कर उनका मज़ाक उड़ाने का प्रयास पुरातन सोच व आध्यात्मवादी सोच में लौटने का प्रयास है। ये ज्ञान के अस्तित्व के लिए तो खतरनाक हैं ही परन्तु साथ ही, इन्सानी सभ्यता द्वारा हासिल किए गए न्याय, मौकों में समकक्षता व बन्धुत्व के आधार को भी चुनौती देते हैं। संस्कार, आस्था, पुरातन अथवा सनातन संस्कृति का अर्थ व उसमें गौरव, आदि सभी पहलू सामाजिक व्यवहार के नियमों, जिसमें ढाँचे की रचना व संचालन शामिल है, उसको प्रभावित करते हैं। अलग-अलग व्यक्तियों, परिवारों व समाजों की आर्थिक परिस्थितियों में अप्रत्याशित विषमता, असीमित विलासिता व आर्थिक प्रभुता से लेकर भुखमरी व पूर्ण गुलामी तक की स्थिति में बँटवारा हरेक को यथास्थिति से असन्तोष तो देता है, किन्तु साथ ही, केवल अपने विकास के बारे में सोचने की मृगमरीचिका में उलझा देता है। सामाजिक विषमता की श्रेणी में

ज़्यादातर लोग नीचे वाले पायदान पर ही हैं, वहीं रहे हैं और आगे भी वहीं रहेंगे, अथवा और नीचे जाएँगे। उनकी आगे बढ़ने व सक्षम होने की सम्भावना लगभग नगण्य है। इसीलिए विज्ञान व टैक्नोलॉजी के अर्थ, उपयोग व इनके ज्ञान के मायने क्या हैं जैसे मुद्दों का दार्शनिक विवेचन और इनपर बातचीत बहुत आवश्यक है। बगैर इन पर सोचे, पुरातन को अच्छा बताना या गैर-ऐतिहासिक ढंग से और गैर-तार्किक विवेचनों द्वारा उसे सही ज्ञान का जामा पहनाने के प्रयास का प्रतिरोध करना मुश्किल होगा। इसलिए तार्किक ढंग से इन पहलुओं को समझना आवश्यक है।

इसके साथ ही, यह समझना भी ज़रूरी है कि विज्ञान हर मसले का हल नहीं हो सकता। वह किन-किन क्षेत्रों, किन मसलों को व उनमें किस तरह के और कौन-से प्रश्नों की जाँच की जानी चाहिए, यह तय करने का आधार नहीं देता। वह किसी भी किस्म के प्रश्नों को रोकता नहीं और कुछ प्रश्नों को ज़्यादा प्राथमिकता का दर्जा नहीं देता। जहाँ बीमारी का कारण खोजने से, बीमारी रोकने के तरीकों को खोजने का प्रयास हो सकता है, वहीं उसी से बीमारी फैलाने के तरीके ढूँढ़ने का भी प्रयास हो सकता है। प्रकृति के कार्य करने के ढंग को समझने का प्रयास अपने आप में इन्सानी जिज्ञासा को आगे बढ़ाने के लिए उपयोगी हो सकता है, किन्तु इस शोध के लिए आवश्यक संसाधन व राशि कहाँ से उपलब्ध होंगे? और अगर होंगे तो किन प्रयोजनों से और किन शर्तों पर?

स्पष्ट है कि यह मानना कि विज्ञान सही ही कहता है व वैज्ञानिक सब कुछ सही-सही और सोच-समझकर ही बताते हैं, यह भी एक खोखला

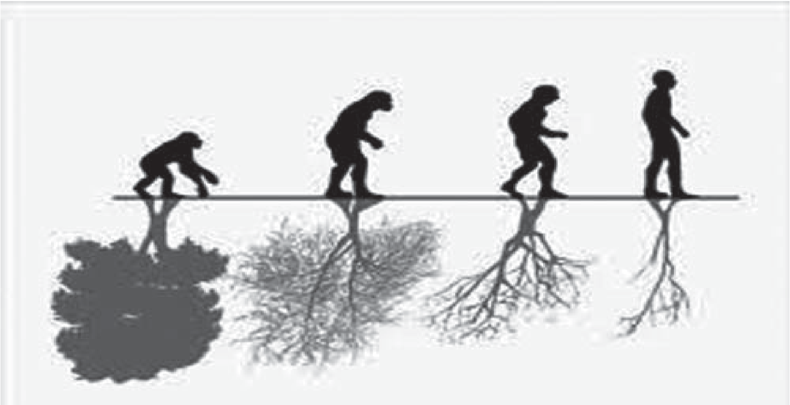

मनुष्य और प्रकृति का आपसी रिश्ता फायदेमन्द होने के साथ-साथ नुकसानदायक भी होता है।

दावा है। अधिक-से-अधिक इसे अर्द्धसत्य कहा जा सकता है। ऐसा कथन कि यह “विज्ञान द्वारा जाँचा गया है और वैज्ञानिक ढंग से खोजा गया है” भी सम्पूर्ण जानकारी नहीं है। इसमें जाँचने वालों व जाँच करवाने वालों के ध्येय का वर्णन नहीं है। जैसा हमने देखा, यह ध्येय विज्ञान निरपेक्ष रूप से, सही तरह से स्वयं निर्धारित नहीं कर सकता।

विज्ञान भी सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक ताकतों की गिरफ्त में है। वह इनसे निकलने का औज़ार तभी बन सकता है यदि उसे सही ढंग से समझा व उपयोग किया जाए। नकारा नहीं जा सकता कि विज्ञान हमें अपनी समझ को जाँचने, परखने व आगे बढ़ाने का पुख्ता आधार देता है। इसके कार्य का तरीका हमें दुविधायुक्त प्रश्नों को परखने का रास्ता दिखाता है। यह सही है कि विज्ञान हमें चुनने का पूरा आधार नहीं देता और न ही हमें इन्हें देखने के सम्पूर्ण व सही नज़रिए के लिए बाध्य करता है। किन्तु फिर भी यह हमें इन्हें जाँचने की प्रक्रिया सुझाता है। यह, अगर हम चाहें तो, हमारी मान्यताओं को जाँचने का भी तरीका दे सकता है किन्तु इसके परिणामों को आधार मानकर लोग अपनी मान्यताएँ बदल लें, ऐसा ज़रूरी नहीं है। कई बार लोग बदली मान्यताओं पर चलते-चलते वापस लौटने का निर्णय भी लेते हैं।

विज्ञान किसी सीमित ज्ञान का, हर समय सही ही रहने वाला पुलिन्दा नहीं है। इसके स्वभाव में भी सशंकितता निहित है। यानी जहाँ जाँच-परखकर बात रखने का दावा है, वहीं यह भी साथ-साथ स्पष्ट है कि यह सब पुन: जाँचा जा सकता है और सर्वथा सत्य नहीं रह सकता। विज्ञान के इसी गुण के कारण सभी विज्ञान करने वाले व्यक्ति एक मायने में बराबर हैं। कथन, परिकल्पना अथवा थ्योरी की जाँच इस आधार पर नहीं होनी है कि उसे कहने वाला कौन है। बल्कि इस आधार पर होनी है कि कही जा रही बात के पीछे क्या प्रमाण हैं और उसके लिए कौन-से तर्क दिए जा रहे हैं। विज्ञान की प्रकृति में व्यक्ति व पद निरपेक्षता, बराबरी, खुले विमर्श, तर्क व प्रमाण का महत्व आदि मौजूद हैं। लोकतंत्र के अहम पहलुओं में ये सभी शामिल हैं। लेकिन इस खुलेपन का गलत इस्तेमाल कर लोकतंत्र में बराबरी व खुले विमर्श के आधारों पर ही प्रश्न चिह्न लगाने का संगठित प्रयास हो रहा है। इसीलिए संविधान की प्रस्तावना में वैज्ञानिक मानसिकता के विकास का स्पष्ट उल्लेख जोड़ा गया है। हालाँकि, कई लोग यह भी कहते हैं कि यह संविधान की प्रस्तावना में व्यक्त विचारों में पहले से ही शामिल है।

* * *

इसका अर्थ यह है कि विज्ञान

सीखना इसलिए फायदेमन्द है क्योंकि यह हमें संवाद करना व प्रमाणों पर विश्वास करना सिखाता है। यह प्रकृति व जीवन के बहुत-से पहलुओं के बारे में बता सकता है। यह हमें अपने आपसी व प्रकृति के साथ के सम्बन्धों को समझना सिखा सकता है। किन्तु इसके लिए सही मसले व पहलू चुनना होंगे। यह माना जा सकता है कि विज्ञान का एक बड़ा हिस्सा प्रकृति के बारे में इन्सानी जिज्ञासा से भी बना है। इसके साथ-साथ स्वार्थों के लिए की गई खोज से भी बहुत-सी ऐसी बातें मिली हैं, जो हमें प्रकृति को समझने व सराहने में मदद करती हैं। किन्तु न तो यह सर्वथा सत्य है और न ही पूर्णतः मूल्यों का आधार। हालाँकि, यह हमें प्रमाणों पर व तर्क पर विश्वास करना सिखाकर ढकोसलों से बचा भी सकता है, किन्तु यह ऐसा तभी कर सकेगा जब हम इसे इजाज़त दें। मूल्यों का ढाँचा बनाने के लिए इसके साथ सामाजिक बराबरी, न्याय, संरक्षण, करुणा, सहयोग, सहिष्णुता, हमदर्दी आदि मूल्यों को शामिल करना होगा। ये मूल्य हमें विज्ञान से नहीं मिलते, बल्कि मानविकी, साहित्य व सामाजिक अध्ययन से मिल सकते हैं। परन्तु इसके लिए भी उपयुक्त शिक्षा व शिक्षण का ढाँचा, और सबसे महत्वपूर्ण, शिक्षक को इसका एहसास व समझ होनी चाहिए।

हृदयकान्त दीवान: *एकलव्य* का गठन करने वाले समूह के सदस्य। होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम और प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम से सम्बद्ध रहे। वर्तमान में *अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन* की पहल 'अनुवाद सम्पदा' का नेतृत्व कर रहे हैं।

सभी चित्र इंटरनेट से साभार।

सन्दर्भ:

- अग्रवाल, पुरषोत्तम, श्रीवास्तव, अशोक एवं अन्य (1981). मेनस्ट्रीम (13-14), अगस्त 29, दिल्ली
- अग्रवाल, पुरुषोत्तम (2021). *कौन है भारत माता?* राजकमल पेपर बैक्स, दिल्ली
- हक्सर, पी. एन., रमन्ना, राजा, भार्गव, पी. एम एवं अन्य (1981). *ए स्टेटमेंट ऑन साइंटिफिक टेम्पर.* मेनस्ट्रीम (6-10), जुलाई 25, दिल्ली
- नंदी, आशीष (1981). *काउंटर स्टेटमेंट ऑन ह्युमनिस्टिक टेम्पर.* मेनस्ट्रीम (6-18), अक्टूबर 10, दिल्ली
- राजन, रवि (2005). *साइंस, स्टेट एण्ड वायलेंस.* रिसर्च गेट की साईट पर 24.03.2021 को देखा https://www.researchgate.net/publication/228916686_Science_state_and_violence_An_indian_critique_reconsidered
- शिवा, वंदना (1981). *मिथ ऑफ़ साइंटिफिक मेथड.* मेनस्ट्रीम (9-10), दिसम्बर 19, दिल्ली
- विस्वनाथन, एस. (1988). *ऑन दी अन्नाल्स ऑफ़ दी लेबोरेटरी स्टेट.* नंदी, आशीष (सम्पादक) की किताब साइंस, हेजेमनी एंड वायलेंस में. ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. 24.03.2021 को देखा: https://web.archive.org/web/20151124071502/http://www.ces.fe.uc.pt:80/emancipa/cv/gen/shiv.html